वीर कवि दशमेश

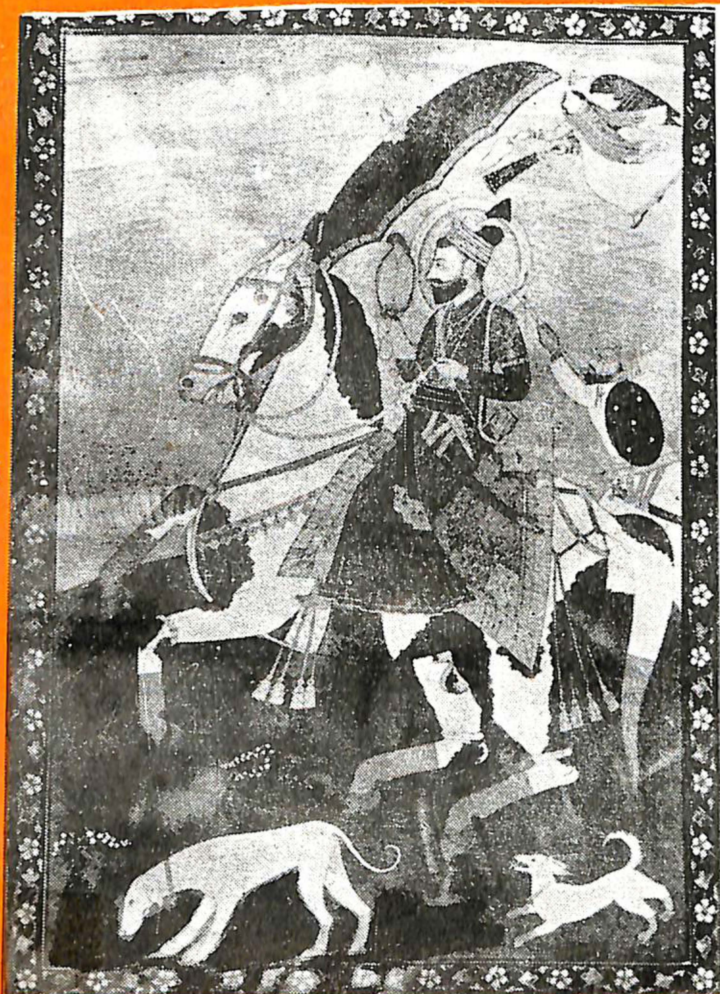

डा० जयभगवान गोयल

Equestrian portrait, of Guru Gobind Singh, 18th century
Kangra School-Guler Pati
Courtesy : Dr. M. S. Randhawa, I.C.S.

H
811
D 26 V

ाब यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो, चंडीगढ़

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

मूल्य : रु १.८० पैसे

Vir Kavi Dashmesh

वीर कवि दशमेश

Jaibhagwan Goyal

डा० जयभगवान गोयल

रीडर, हिन्दी विभाग

पंजाब यूनिवर्सिटी स्नातकोत्तर प्रादेशिक केन्द्र, रोहतक।

पंजाब यूनिवर्सिटी

पब्लिकेशन ब्यूरो

चण्डीगढ़

Punjab University Publication Bureau Chandigarh

CATALOGUED

Published by
BAL KRISHNA, M.A., *Secretary*,
Publication Bureau, Panjab University, Chandigarh.

H 811
D 26 V

Copyright

76609
18.7.91

Printed by
PANNA LAL KHANNA, *Manager*,
Panjab University Press, Chandigarh.

Library IIAS, Shimla
H 811 D 26 V
00076609

उत्तर-भारत पर यवनों के ग्राक्रमण लूट-मार करने ग्रौर राज-सत्ता स्थापित करने के लिये तो थे ही, इस्लाम धर्म का प्रचार ग्रौर प्रसार भी उनका एक मुख्य उद्देश्य था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस्लाम का झंडा लिए हुए मुसलमान-सैनिक जिस देश में भी गए, वहां के धर्म ग्रौर संस्कृति को विनष्ट कर उन्होंने वहां इस्लाम की स्थापना की। जिस समय भारत पर उनके ग्राक्रमणों का ज़ोर बढ़ा, किसी केन्द्रीय राजनैतिक शक्ति के ग्रभाव में भारत को उनसे हारना ग्रवश्य पड़ा, परन्तु भारतीय समय पा पा कर वे निरन्तर उन से जूझते रहे। इस लिए मध्ययुगीन भक्ति-ग्रान्दोलन को 'हारी हुई' या पराजित मनोवृति की देन कहना सर्वथा भ्रामक है। भारतीयों की मनोवृति 'हारी हुई' कदापि नहीं थी। वे हारे ग्रवश्य थे, परन्तु उन्होंने हार बिल्कुल नहीं मानी थी।

विदेशी ग्राक्रमण से रक्षा का उत्तरदायित्व शासक वर्ग पर ही होता है। परन्तु इस युग में भारत की राजनैतिक एवं सैनिक शक्ति जर्जरित एवं क्षीण थी। इसलिए शासक वर्ग से रक्षा की पूर्ण ग्राशा नहीं की जा सकती थी। दूसरे, यवनों का ग्राक्रमण राजनैतिक ग्रधिपत्य की ग्रपेक्षा सांस्कृतिक दृष्टि से ग्रधिक घातक था। भारत के तत्व चिंतकों एवं मनीषियों ने यह ग्रनुभव किया कि सैनिक क्षेत्र में यवनों की विशाल-वाहिनी का मुकाबला करने वाले शासक के ग्रभाव में सांस्कृतिक धरातल पर इस्लामी संस्कृति के ग्रभियान का मुकाबला करना बहुत ज़रूरी है। क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं ऐसा न हो कि समस्त ग्ररब देश की भांति भारतीय धर्म-दर्शन ग्रौर संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट कर यहां भी इस्लाम की स्थापना न हो जाए। वस्तुतः मध्यकालीन भक्ति-ग्रान्दोलन इसी स्वातन्त्र्य-भावना एवं सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है। समस्त देश जैसे एक होकर इस ग्रभियान के लिए उठ खड़ा हुग्रा। इस का प्रमाण है सभी भारतीय भाषाग्रों में रचित तत्कालीन साहित्य। भारत की लग-भग सभी भाषाग्रों में उस युग में जो साहित्य लिखा गया उसमें भक्ति का

स्वर ही प्रमुख है । हिन्दी के अतिरिक्त पंजावी, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, उड़िया, मैथिली, वंगला, आसामी आदि आर्य-भाषाओं में ही नहीं दूर दक्षिण की तमिल, कन्नड़, मलयालम आदि द्रविड़ भाषाओं में भी अत्यधिक परिमाण में भक्ति-साहित्य लिखा गया और आश्चर्य इस बात से होता है कि इस सारे साहित्य की मूल-भावना, एवं स्वरूप एक सा है। क्या यह सांस्कृतिक एकता, भावनाओं एवं अभिव्यक्तियों का साम्य भारत की राष्ट्रीय एकता एवं उसकी जागृति का सूचक नहीं है। इस आन्दोलन को एक शक्तिशाली राष्ट्रीय आन्दोलन के ही रूप में स्वीकर किया जाना चाहिए। वस्तुतः उस युग में सांस्कृतिक एकता ही राष्ट्रीयता (Nationalism) की द्योतक थी, राजनैतिक एकता की भावना ने वहुत वाद में ज़ोर पकड़ा । इस शक्तिशाली सांस्कृतिक–राष्ट्रीय आन्दोलन का ही यह परिणाम है कि आज भी शताब्दियों के यवन-अधिपत्य के बावजूद भारतीय संस्कृति जीवित है। उसकी वह दशा नहीं होने पाई जो अरबों की हुई थी। मैं समझता हूं कि मध्य युगीन भक्ति-आन्दोलन का मूल्यांकन एक वृहद एवं व्यापक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में होना चाहिए।

पंजाब में इस आन्दोलन को संचालित करने का श्रेय सिखमत के संस्थापक—गुरु नानकदेव को है । उनकी चिंतनधारा में भी हमें भक्ति के उन्हीं मूल तत्वों का दिग्दर्शन होता है, जो अन्य प्रदेशों के भक्ति-आन्दोलन में विद्यमान थे । एक विशिष्टता के दर्शन उनमें अवश्य होते हैं। सिक्ख-साधना में वीर-भावना की झलक आरम्भ से ही मिलती है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि यवन-आक्रमणकारियों का मुकावला पंजाब को ही करना पड़ता था और वह साहस और उत्साह उनके अवचेतन में हर समय मौजूद रहता था । कुछ भी हो सिक्ख-साधना के अन्तर्गत यह वीर-भावना धीरे धीरे विकसित होती गई और 'खालसा' की स्थापना से वह परिपक्व होकर प्रकट हुई ।

सिक्खमत मूलतः आध्यात्मिक आन्दोलन था, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु गुरु गोबिन्दसिंह को वीर आचरण अपनाना पड़ा, इसका उत्तरदायित्व उस युग की परिस्थितियों पर है। जिस समय गुरु गोबिन्दसिंह का प्रादुर्भाव हुआ देश अत्यन्त दयनीय स्थिति से गुजर रहा था । इस समय औरंगज़ेब

सत्तारूढ़ था । उससे पूर्व के मुगल शासक कुछ धर्म-सहिष्णु एवं उदार थे । विशेष रूप से अकबर ने धर्म-स्वातन्त्र्य एवं निरपेक्षता की नीति को अपनाया था, परन्तु औरंगज़ेब की धर्मांधता, असहिष्णुता, और अत्याचार से हिन्दू जनता आतंकित थी । निर्बल और असहाय भारतीयों को अपमान और अवमानता का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा था । या इस्लाम कबूलो या पराधीनता की कटुता झेलो । इस शोषण और दमन के विरुद्ध दक्षिण में सिरजा शिवा जी के नेतृत्व में मराठों ने और पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व में सिक्खों ने एक शक्तिशाली विद्रोहात्मक स्वातन्त्र्य आंदोलन का सूत्रपात किया । गुरु गोविन्दसिंह ने शाही फरमान की कोई चिंता न करते हुए अपना झंडा लहरा कर और धौंसे की धुंकार से स्वतंत्रता और विद्रोह की घोषणा कर दी । (उन दिनों कोई भी हिन्दू अपना झंडा नहीं लहरा सकता था और न ही धौंसा बजा सकता था) । शिवा जी का विरोध मुख्यतः राजनैतिक (सैनिक) था, जबकि गुरु गोबिन्दसिंह सांस्कृतिक एवं राजनैतिक (सैनिक) दोनों मोर्चों पर लड़ रहे थे । हिन्दू धर्म की रक्षार्थ गुरु गोबिन्दसिंह के पिता श्री गुरु तेग बहादुर अपना बलिदान दे चुके थे, परन्तु उनके शांतिपूर्ण बलिदान से क्रूर मुगल शासक जरा भी नहीं पसीजा, इसलिए विवश होकर गुरु गोबिन्दसिंह को 'सर्वलोह' का आश्रय लेना पड़ा और उन्होंने 'खालसा' पंथ की स्थापना की । स्वयं खड्ग धारण करके उन्होंने चण्डी-स्वरूपा भारत की सुप्त वीर शक्ति का आह्वान किया । परिणाम-स्वरूप यवनों से उन्हें कई युद्ध करने पड़े जिनका वर्णन उन्होंने 'विचित्र नाटक' में किया है ।

इस समय हिन्दुओं की अपनी धार्मिक अवस्था भी वैष्णवों, शैवों, शाक्तों, सिद्धों, नाथों, संतों आदि के संघर्ष के कारण जर्जरित थी । साधारण जनता अनेक मत-मतान्तरों के चक्कर में फंसी हुई, मिथ्याचार, बाह्याडम्बर एवं पाखंडपूर्ण साधनाओं को ही वास्तविक धर्म समझने लगी थी और जाति-पांति एवं वर्ण भेद के संघर्ष में उलझे हुए वे पृथक खान-पान और रहन-सहन को ही धर्म का मुख्य अंग मानते थे । जब गुरु गोबिन्दसिंह ने 'खालसा' की स्थापना की और धर्मयोद्धा के उत्साह से जाति-पांति वर्ण-वर्ग भेद, बाह्याचारों एवं कर्म-कांड आदि का खंडन करते हुए सब की समानता की घोषणा की तो पहाड़ी राजाओं ने उन्हें धर्म-विरोधी करार दिया और उनके विरुद्ध औरंगज़ेब

से शिकायतें करने लगे । वास्तव में वे गुरु जी के बढ़ते हुए प्रभाव से भयभीत होने के कारण औरंगज़ेब की सहायता से उनके दमन का कुचक्र रच रहे थे। औरंगज़ेब स्वयं इस सुअवसर की खोज में था, इसलिए उसने सहर्ष पहाड़ी राजाओं का साथ देना स्वीकार कर लिया । इस संयुक्त मोर्चे के विरुद्ध लड़ने के लिए गुरु जी ने अपने अनुयायियों को संगठित करना आरम्भ किया और उनमें धर्म-युद्ध का उत्साह उत्पन्न करने के लिए अपनी काव्य-शक्ति का भी पूरा उपयोग किया । 'दशमग्रंथ' इसी मंगलमय अभियान का एक अंग है । वह धर्म-योद्धाओं का प्रेरणा स्रोत है । वीरगाथाकालीन एवं भक्तिकालीन साहित्यिक परम्पराओं एवं प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाला ऐसा काव्य-ग्रंथ है, जिसमें पंजाब की तत्कालीन स्वातन्त्र्य-भावना एवं सांस्कृतिक चेतना मुखरित हुई है।

कुछ विद्वान सम्पूर्ण 'दशमग्रंथ' को ही गुरु गोविन्दसिंह की कृति मानते हैं, जबकि अधिकतर विद्वान 'जापु साहिब', 'अकाल उस्तति', 'बचित्र नाटक' (अपनी कथा) आदि कुछ कृतियों को छोड़कर अन्य को उनके दरबारी कवियों की रचना मानते हैं। परन्तु यह अगर मान भी लिया जाए, कि ये सभी रचनाएं दशमगुरु कृत नहीं हैं तो भी यह मानना पड़ेगा कि इन सभी पर उनकी स्वीकृति की मुहर लगी हुई है। उन्होंने जिस प्राण-वान सांस्कृतिक चेतना, स्वातन्त्र्य-भावना, राष्ट्रीय-स्वाभिमान एवं धर्म-रक्षा का भाव पंजाब के जन-जीवन में जागृत किया था: उससे सम्पूर्ण 'दशम ग्रंथ' आन्दोलित है ।

'दशमग्रंथ' में दो प्रकार की वीर-रचनाएं उपलब्ध हैं । एक ऐतिहासिक प्रबन्ध के रूप में, जैसे 'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) और दूसरी पौराणिक प्रबन्धों के रूप में जैसे चौबीस अवतार, चण्डी चरित्र उक्ति विलास एवं चण्डी चरित्र द्वितीय, आदि ।

'विचित्र नाटक' गुरु गोविन्दसिंह द्वारा चरित्र-काव्य शैली में रचित एक ऐसा वीर-काव्य है, जिसमें किसी देवी-देवता या अन्य वीर-पुरुष के चरित्र में अनेक अतिमानवीय, अलौकिक अथवा चमत्कारपूर्ण घटनाओं का समावेश करके उसकी वीरता, शौर्य, दृढ़ता, साहस, पौरुष आदि की अतिशयोक्तिपूर्ण

प्रशंसा नहीं की गई, वरन् यह गुरु जी के अपने जीवन से सम्बन्धित है और उसमें 'आत्मकथा' की सी सत्यता, यथार्थता एवं सहजता है। तटस्थ आत्म-निरीक्षण एवं प्रभावपूर्ण आत्म-अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह एक आदर्श, उत्कृष्ट एवं विशिष्ट रचना है। यह अत्यन्त विश्वासपूर्ण, स्वच्छ एवं आकर्षक शैली में रचित वीररसानात्मक कथा है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की साहसिक एवं ओजस्वी पद्यात्मक आत्मकथा दुर्लभ है। परन्तु इस रचना का उद्देश्य केवल मात्र आत्म-अभिव्यक्ति अथवा आत्म-प्रकाशन नहीं है, आत्म-विज्ञापन तो बिल्कुल नहीं। शहीद के पुत्र और शहीदों के पिता संतयोद्धा गुरु गोविन्दसिंह ने इस काव्य-ग्रन्थ की रचना असहाय एवं निराश हिन्दू जनता में जातीय स्वाभिमान, राष्ट्र-प्रेम एवं धर्म-रक्षा के उच्च भावों को उत्तेजित करने के महान उद्देश्य से की है।

इस धरातल पर अपने आगमन के उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं कि मुझे गुरुदेव ने धर्म-स्थापन के लिए भेजा है और कहा है कि जहां जहां दुष्टों को देखो उन्हें मार गिराओ[1]। वे हिन्दुओं के मन में यह बात बिठाना चाहते थे कि वे यवनों के अन्याय और अत्याचारों से उनका उद्धार करने के लिए ही यहां आए हैं। और जो इस धर्म-युद्ध में उनका साथ देगा, वह (ईश-कार्य में योगदान देने के फलस्वरूप) ब्रह्मलोक को प्राप्त करेगा। उन्होंने यह भी स्पष्ट कहा कि जो कोई भी किसी लोभ के कारण या मुगलों के भय से अन्याय और अधर्म के विरुद्ध लड़ने से विमुख होकर उनका साथ छोड़कर जाएगा, वह अपने दोनों लोकों को खराब करेगा। यहां उसका मुंह काला होगा[2], मुगल भी उसकी दुर्दशा करेंगे[3], तथा उसका परलोक भी बिगड़ेगा। ऐसे कायरों की उन्होंने भर्त्सना की है और उन्हें सचेत भी किया

---

1. हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरदेव पठाए।
   जहां तहां तुम धरम विथारो। दुसट दोखियनि पकरि पछारो।
   (विचित्र नाटक, ७:२६)
2. वही, १४:२-७
3. वही, १४:१८

है कि एक बार साथ छोड़ देने पर फिर वे उसकी रक्षा नहीं करेंगे[1], भले ही उन्हें मुगल लूटें या अपमान करके अन्य कष्ट दें[2]। वे उन्हें यह विश्वास भी दिलाते हैं कि जो कोई भी उनकी शरण में आएगा, वे उसे सच्चा पाहुल (अमृत) प्रदान करेंगे[3] और शत्रु भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकेंगे[4]। इस प्रकार वे अपने योद्धाओं में उत्साह और साहस के साथ साथ दृढ़ता, आशा और विश्वास भी पैदा करना चाहते थे। वे यह स्पष्ट कर देना चाहते थे कि वे अपने लिए नहीं वरन् उन्हें ही मुगलों के अन्याय और अत्याचार से मुक्त करने एवं देश और धर्म की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं। वे प्रत्येक हिन्दू के हृदय में अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की भावना जाग्रत करना चाहते थे। वे चाहते थे कि उनमें ऐसा स्वाभिमान जगे कि वे स्वयं अन्याय और अनीति के विरुद्ध लड़ें। इसी लिए उन्होंने सिक्खों को उन मसन्दों का विरोध करने का भी आदेश दिया जो उनसे अनुचित कर लेते थे[5]। कहना न होगा कि राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक प्रेम से युक्त ऐसी वीर-भावना का इस युग के अन्य वीर-काव्यों में सर्वथा अभाव है।

मध्यकालीन भारत की हिन्दू जनता रूढ़िग्रस्त, प्रमादयुक्त, आलसी और विरुद्यमी हो चुकी थी। उनके अंदर एक नई कर्मण्यता एवं कर्मठता पैदा करने की ज़रूरत थी। ऐसी कर्मण्यता जो उनमें शक्ति, साहस, स्वाभिमान, एवं उत्साह का संचार कर सके। 'विचित्र नाटक' में गुरु जी ने इन भावों को जाग्रत करने का स्तुत्य कार्य किया है। परिश्रम का महत्व प्रतिपादित करते हुए उन्होंने लिखा है कि जो हंसी में भी परिश्रम एवं उद्यम करेगा वह सभी सुखों और सिद्धियों को प्राप्त करेगा[6]।

---

1. विचित्र नाटक, १४ : ६–११
2. वही, „ „ „
3. वही, १४ : १८
4. वही, १४ : १२
5. वही, १४-११-१२
6. वही, १४-१५।

'विचित्र नाटक' (अपनी कथा) में गुरु गोबिन्दसिंह एक वीर, साहसी एवं यशस्वी शूरवीर, कुशल सेना-संचालक, राष्ट्र-प्रेमी धर्म-रक्षक, दुष्ट-संहारक एवं संत-उद्धारक, निर्भीक, पराक्रमी, दृढ़-निश्चय, आशावादी, आस्थावान, एवं विनम्र राष्ट्रनायक के रूप में सामने आते हैं। वे एक महान् अभियान का संगठन और संचालन करने में समर्थ हैं। उनमें औदार्य भी है और साहस भी, उत्साह भी है और विनम्रता भी। वे गज़नवी और चंगेज़खां की भांति शक्ति संचित कर अत्याचार और अन्यायपूर्ण राज-भोग करने वाले योद्धा नहीं हैं, वरन् वे शक्ति संगठन ही अत्याचार और अन्याय का विनाश करने के लिए करते हैं। वे बाह्याचारों, पाखंडों एवं जाति-पांति के कट्टर विरोधी और अकालपुरुष के सच्चे सेवक और भक्त हैं।

'विचित्र नाटक' में कुल १४ अध्याय हैं। जिनमें से आठ में युद्ध-वर्णन है। रचना की उदात्त वीर-प्रवृत्ति का परिचय आरम्भ में ही मिल जाता है जब कवि अधर्मी और अत्याचारी शत्रु की विनाशक खड्ग की वंदना करता है :

खग खंड विहंड खल दल खंड अति रण मंड बखंडं।
भुज दंड अखंड तेज प्रचंड जोति अमंड भान प्रभं।
सुख संता करणं दुर्मति दरणं किलविख हरणं अस सरणं।
जै जै जग कारण स्रिसट उबारन मम प्रतिपारन जै तेगं।१:२।

अर्थात् तलवार टुकड़े अच्छी तरह करती है दुष्टों के समूह के टुकड़े करती है, युद्ध को बहुत सुन्दर बना देती है, ऐसी बलवान है। न टूटने वाला हाथ का डंडा है। बहुत तीक्ष्ण तेज वाली है। इसकी ज्योति सूर्य प्रभा को शोभाहीन कर देती है। यह तलवार संतों को सुखी करने वाली, दुष्टों को मर्दन करने वाली, पापों का नाश करने वाली है, यह मेरा आश्रय है, जगत की कारण, सृष्टि की पालक, मेरा प्रतिपालन करने वाली है। ऐ खड्ग तेरी जय हो[1] दुष्ट-विनाशक, संतों की रक्षक एवं धर्म-संस्थापक, कृपाण, कटार, तीर,

---

1. 'रामावतार' में दुष्ट विनाशक खड्ग की प्रशंसा में एक ऐसा ही छन्द आया है। (दष्ट छन्द संख्या ५८८)

तुफंग, गदा, ग्रिसट, सैहथी ग्रादि ग्रस्त्र-शस्त्रों को भी उन्होंने इसी प्रकार नमस्कार किया है। कवि ने 'ग्रकाल पुरुष' की भी 'वाण-पाणि', चक्रपाणि (१:८६, ८६) कह कर वंदना की है ग्रौर उसके दुष्ट-विनाशक, ग्रसुर-संहारक, संत-रक्षक, वीर-रसात्मक रूप का वर्णन किया है।

'विचित्र नाटक' में कवि ने वीरों के व्यक्तित्व एवं उनके युद्धों का ग्रत्यन्त सजीव, यथार्थ एवं ग्रोजस्वी चित्रण किया है। योद्धाग्रों के भाव-ग्रनुभाव, क्रोध, शस्त्र-संचालन, युद्ध-कुशलता, घाव-सहने, रक्त-प्रवाह ग्रादि का सजीव चित्र नेत्रों के सामने ग्रा जाता है।

युद्ध की भीषण गति एवं युद्ध की विकरालता एवं भयानकता को प्रकट करने के लिए कवि ने भूत-प्रेत, वीर वेताल ग्रादि के हंसने, नाचने, रक्तपान करने तथा गिद्धों, शृगालों ग्रादि के मांस नोचने ग्रादि का भी वर्णन किया है। यही नहीं युद्ध में संलग्न वीरों की एक एक गति, क्रिया, ग्रनुभाव ग्रादि का ग्रत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण करके उसका यथार्थ एवं सजीव चित्र ग्रंकित किया है।

भंगाणी की युद्ध-कथा में कवि ने सामरिक विद्या एवं युद्ध नीति का भी परिचय दिया है। युद्ध में विजय प्राप्त करके वे उस नगर में नहीं रहे, ग्रानन्दपुर में ग्रा बसे ग्रौर जिन्होंने युद्ध में गुरु जी का साथ नहीं दिया था, उन सभी को नगर से निकाल दिया। क्योंकि ऐसे व्यक्ति ही भेदियों का काम करके हानि पहुंचाते हैं।

प्रबन्ध कथा की दृष्टि से 'विचित्र नाटक' एक शिथिल रचना है। कथा में न पूर्णता है, न संतुलन। युद्ध-प्रसंग ही इसके सर्वाधिक रोचक एवं महत्वपूर्ण ग्रंश हैं। इन युद्ध-कथाग्रों में भी कवि ने योद्धाग्रों की वीरता, शौर्य-प्रदर्शन एवं प्रहार-प्रतिप्रहार (भिडन्त) ग्रौर उसमें किए गए लोह-वर्षण का ही ग्रधिक चित्रण किया है। युद्ध-कथा का सम्पूर्ण इतिवृत्त नहीं दिया। उसके कारणों, दोनों पक्षों की तैयारी, सेना प्रस्थान, दूत भेजने, वीरों की साज-सज्जा, उनकी ललकार-प्रतिललकार गर्वोक्तियों, व्यूह रचना, छावनी डालने, मार्ग में विश्राम करने, ग्राक्रमण करने, घेरे में पड़ी सेना की कठिनाइयों ग्रादि का चित्रण उन्होंने ग्रधिक नहीं किया। उन परिस्थितियों एवं कारणों के निरूपण से जिनका

उनके अनुयायियों को पूरा ज्ञान था कथा को विस्तार देने की आवश्यकता गुरु जी नहीं समझते थे। जिस उत्साह से उन्होंने ये युद्ध लड़े, उसी उत्साह से वे उनकी भिडन्त का वर्णन करते हैं। अनावश्यक इतिवृत्त-विस्तार से उसकी गति को शिथिल बनाना नहीं चाहते। इन भीषण युद्धों का सजीव, ओजस्वी, गतिशील, ध्वन्यात्मक एवं उग्रतापूर्ण चित्रण करने में वे पूर्ण सफल रहे हैं।

निसाण, दुदंभि, तवले, आदि रण-वाद्यों के तुमल-नाद से भीषण रूप धारण किए हुए युद्ध में योद्धाओं के क्रोध से उत्तेजित होकर जूझने, घोड़ों के हिनहिनाने, जवानों के गरजने, कृपाण और सैंहथी के सडकने, परशु के छड़कने, तलवारों की कटाकट, गोलियों की तड़ातड़, योद्धाओं की धुका-धुक्क और जवानों की हत्या-हत्थी आदि का ओजपूर्ण एवं सजीव चित्रण किया गया है। ध्वन्यात्मक शब्द युद्ध का ध्वनिपूर्ण वातावरण प्रस्तुत करने में सहायक हुए हैं।

हुसैनी युद्ध में कवि ने सेनापति के मिथ्याभिमान एवं गर्व का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

युद्ध-भूमि के विकराल, भीषण एवं भयावह चित्र प्रस्तुत करने के लिए कवि ने युद्ध-भूमि में टूटे हुए अस्त्र-शस्त्रों, क्षत-विक्षत योद्धाओं, बिखरे हुए रुंड मुंडो, लोथों पर लोथों के गिरने, खाली फिरते घायल घोड़ों, रक्त प्रवाह एवं उन पर मंडराते गिद्ध, शृगाल एवं कंक तथा नाचते भूत-प्रेतों आदि का भी विशद चित्रण किया है। कहीं कहीं योद्धाओं क अनुभाव भी सजीव रूप में प्रकट हुए हैं।

वस्तुतः भाव-भंजना, युद्ध कथा वर्णन एवं उद्देश्य की महानता के कारण 'अपनी-कथा' एक उत्कृष्ट रचना है।

'दशम ग्रंथ' में दूसरे प्रकार की रचनाएं पौराणिक आख्यानों के रूप में आई हैं। इस में मच्छ, कच्छप, नर, नारायण, मोहिनी, बराह, नृसिंह, बावन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जालन्धर, विष्णु, दुर्गा, अर्हन्तदेव, मनु, धन्वन्तरि, सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण, निहकलंकी, बौद्ध आदि की अवतारों की कथाओं का निष्ठापूर्वक वर्णन किया गया है। ये कथाएं मुख्यतः शिवपुराण (बराह)

भागवत पुराण, पद्ममपुराण (नृसिंह, राम), ब्रह्म, बैवर्त, ब्रह्मंड, भविष्य, मार्कण्डेय (ब्रह्मावतार) हरिवंशपुराण (धन्वन्तरि) आदि से ली गई हैं। आरम्भ में कवि ने ब्रह्म के स्वरूप एवं पृथ्वी पर अवतार आगमन के कारण एवं उद्देश्य का निरूपण किया है। जब पृथ्वी पर असुरों की शक्ति और आतंक बढ़ता है तथा संत दुखी होते हैं तो उनके विनाश के लिए और संतों के उद्धार के लिए अवतार यहां आते हैं (१:२)

इन कथाओं में कच्छप, मच्छ, नर, नारायण, मोहिनी, वराह, अर्हन्त, धन्वन्तरि, मनु, सूर्य, चंद्र, आदि अवतारों से संबन्धित प्रसंग अत्यन्त संक्षिप्त हैं। अधिक विस्तार 'रामावतार' तथा 'कृष्णावतार' को ही दिया गया है। वस्तुतः, यह ही दो रचनाएं स्वतंत्र प्रबंध की कोटि में रखी जा सकती हैं, इनमें भावों की विशदता, मार्मिकता एवं सजीवता है। इनमें वीरों का शौर्य और उत्साह, स्त्री पुरुष का रूप-चित्रण, नख-सिख, प्रेम, मिलन, विरह, वन, पुष्प, लता, नदी, मेघ, वर्षा आदि से सम्बन्धित प्रकृति चित्रण एवं, बारह-माहा, युद्ध, जन्म एवं विवाहोत्सव आदि के आकर्षक एवं प्रभावशाली वर्णन तथा विदग्धता-पूर्ण एवं रोचक संवाद उपलब्ध हैं। छन्द-वैविध्य, अलंकार-सौष्ठव एवं रचना-कौशल की दृष्टि से भी ये रचनाएं महत्वपूर्ण हैं।

२. रामावतार :

'रामावतार' उच्च नैतिक स्वर एवं उदात्त वीर-भावना से ओत-प्रोत एक उत्कृष्ट प्रवन्ध काव्य है। जिसमें 'वाल्मीकि रामायण', पद्म पुराण, भागवत, हनुमान नाटक आदि राम-काव्यों के आधार पर राम की 'बीन-कथा का वर्णन किया गया है।

कथा में संतुलन एवं प्रवाह पूरा नहीं है। राम कथा के सभी प्रसंगों को समुचित विस्तार भी नहीं दिया गया। कवि ने 'बीन बीन' कर कुछ ही प्रसंगों को अधिक उठाया है। बहुत से प्रसंग तो 'इन बातन को इक ग्रंथ बढ़ै, तहितै कही थोरिए बीन कथा', कह कर चलता कर दिया गया है। राम कथा के मार्मिक प्रसंगों पर भी कवि का अधिक ध्यान नहीं गया।

'रामवतार' में कवि की रुचि युद्ध-वर्णनों में ही अधिक है अन्य प्रसंगों का या तो उल्लेख मात्र किया है, या अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन करके आगे बढ़ गया है। वह मार्ग की भूमियों-घटनाओं पर नज़र ज़रूर डालता है, मगर वह वहां उतरता नहीं। उतरता वह युद्ध-भूमि में ही है।

'रामावतार' के ८६४ छंदों में से लगभग ४२५ छन्द युद्ध-कथाओं से सम्बन्धित हैं। प्रबंध-कथा की दृष्टि से यह एक शिथिल रचना है, परन्तु यह एक सफल 'वीर-काव्य' है और वीर-रसात्मक युद्ध-कथाओं का वर्णन कवि ने विशदता, सजीवता एवं कुशलता से किया है।

इस के नायक 'भुएं भार उतारने' के लिए असुरों का संहार और संतो का उद्धार करने के लिए अवतरित हैं, जिसके लिए उन्हें वीर-रूप धारण करना पड़ता है और उनके वीर चरित्र का ही इस रचना में विशद आख्यान उपलब्ध है। यह विशुद्ध 'वीर-काव्य' है।

'कृष्णावतार' का भी 'बिचित्र नाटक' की चौबीस-अवतार कथाओं में विशिष्ट स्थान है। यह 'भागवत' दशम स्कंध के आधार पर रचित २४९२ छन्दों का एक बृहदाकार एवं उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य है। 'रामावतार' में कवि का ध्यान मुख्यतः युद्ध-वर्णन पर ही रहा है, अन्य महत्वपूर्ण प्रसंगों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन किया गया है, या उल्लेख मात्र कर दिया है। परन्तु 'कृष्णावतार' में कवि ने कृष्ण के चरित्र का व्यापक एवं विशद चित्रण किया है।

इसके कथानक में एक विशालनद की गम्भीरता, वेग एवं प्रवाह है। इस में 'रामावतार' की भांति असंतुलन भी नहीं है। कथानक का संतुलित एवं संयमित ढंग से विकास होता है और सभी प्रसंगों का यथायोग्य निरूपण किया गया है। उसमें जीवन की विविधता एवं शक्ति है।

इसमें कृष्ण के जन्म, शिशु-सौन्दर्य, उसकी मोहक एवं आकर्षक चेष्टाएं, हाव-भाव एवं शिशु-कौतक, बाल क्रीडा एवं नंद-यशोदा के वात्सल्य आदि के साथ कृष्ण द्वारा पूतना, शकटासुर, अघासुर, तृणावर्त, चंडूर, वकासुर आदि

दैत्यों का वध करने, कृष्ण और गोपिओं के आकर्षण, प्रेम, मिलन और अभिसार तथा गोपियों की आसक्ति, मोह, विलास, उल्लास, दीप्ति, गर्व, लज्जा, ईर्ष्या, जड़ता, उनकी विरहगत्त, अधीरता, विह्वलता, व्याकुलता, आतुरता, वेदना, उन्माद आदि का भी सजीव चित्रण किया गया, है। इन वर्णनों में कहीं कहीं अश्लीलता भी आ गई है।

परन्तु कृष्ण-भक्त कवियों की भांति यहां इन रस-लीलाओं को इतना अधिक महत्व नहीं दिया गया है कि यह प्रतीत हो कि यह लीला गान करना ही कवि का उद्देश्य है।

'युद्ध-प्रवन्ध' इस रचना का मुख्य भाग है, जिसमें कवि ने कृष्ण के जरासंध, शिशुपाल आदि के साथ अनेक युद्धों का विस्तृत वर्णन किया है। सम्भवतः हिन्दी के कृष्ण काव्य में यह पहला ग्रंथ है, जिसमें कृष्ण के युद्धों का इतनी विशदता और विस्तार से वर्णन किया गया है। सम्भवतः पहली वार इसी रचना में कृष्ण एक असुर-संहारक, धर्म-संस्थापक, धर्मवीर एवं युद्ध-वीर लोक-रक्षक के रूप में चित्रित हुए हैं। कृष्ण के इतने विशद, व्यापक चरित्र को लेकर लिखा जाने वाला भी सम्भवतः यह पहला और अकेला प्रबन्ध है। ब्रज के कृष्ण-भक्त-कवियों ने तो उसके रसेश्वर रूप की रसिक लीलाओं में ही रस लिया है, वे उनकी युद्धवीरता से उत्साहित नहीं हुए। 'कृष्णावतार' की रचना युद्धोत्साह प्राप्त करने के लिये ही की गई थी। कवि ने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए एक स्थान पर लिखा है :

अवर वासना नाहि प्रभ, धरम जुद्ध की चाइ (२४९१ कृष्णावतार)

खेद है कि यह युद्ध-प्रवन्ध अभी तक हिन्दी समीक्षकों द्वारा प्रायः उपेक्षित ही रहा है। 'दशम ग्रंथ' पर कुछ शोध प्रबन्ध लिखे जाने पर भी इसका समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ।

इस रचना के द्वारा कवि कृष्ण-भक्ति का प्रचार करना नहीं चाहता। वरन् कंस, जरासंध आदि असुर उसके लिए अत्याचारी मुगल-शासकों के प्रतीक थे। वे दिखाना चाहते थे न्कि उनके विरुद्ध वे उसी प्रकार से लड़ रहे हैं, जैसे कृष्ण असुरों के साथ लड़े थे। अपने अनुयायियों को इस धर्मयुद्ध के लिए उत्साहित करने के लिए ही वे कृष्ण की वीर कथाएं सुनाते या सुनवाते थे।

'कृष्णावतार' में कृष्ण के जरासंध एवं शिशुपाल आदि के साथ अनेक

युद्धों का पूरे व्योरे के साथ सजीव, विशद एवं ओजपूर्ण वर्णन किया गया है और योद्धाओं की चरित्रगत विशेषताओं का भी विशद निरूपण किया गया है। कृष्ण और बलराम की शूरवीरता, धैर्य, निर्भीकता, दृढ़ता, उत्साह, आत्म-विश्वास, साहस, औदार्य आदि का तो विशद चित्रण किया ही है, विपक्षी दल के वीरों के शौर्य, धैर्य, दृढ़ता, उत्साह, साहस, निर्भीकता, रणोल्लास, युद्ध-कुशलता, सेना-संचालन आदि का भी खुल कर वर्णन किया गया है। जरासंध की वीरता का आदर्श इन शब्दों में देखा जा सकता है।

कहा भयो मम ओर के सूर हने संग्राम ।
लरबो मरबो जीतबो इह सुभटनि के काम ।१८४८।

युद्ध में लड़कर विजय पाना या मरकर वीर-गति को प्राप्त करना ही सच्चे वीर का धर्म है। गीता में भगवान कृष्ण ने भी इसी वीर-धर्म का प्रतिपादन किया है।

इस प्रबन्ध में कवि ने उद्धव एवं अक्रूर को भी साहसी शूरवीर दिखाया है। अब तक हिन्दी साहित्य उद्धव के व्यक्तित्व से कृष्ण के संदेश-वाहक के रूप में ही परिचित था। अक्रूर भी उनको लिवा लेने के लिए ही ब्रज गए थे, परन्तु यहां वे भी एक पराक्रमी योद्धा के रूप में सामने आते हैं। हिन्दी साहित्य में संभवतः सर्वप्रथम ये पात्र यहीं योद्धा रूप में चित्रित हुए हैं।

'कल्कि अवतार' भी ५८८ छंदों का वीर रस प्रधान खण्ड-काव्य है जिसमें आसुरी शक्तियों पर दैवी शक्तियों की विजय दिखाई गई है।

विष्णु के २४ अवतारों के अतिरिक्त 'दशमग्रंथ' में ब्रह्मा एवं रुद्र अवतारों की कथाओं का भी निरूपण किया गया है। ब्रह्मावतारों में वीररस नहीं है, परन्तु रुद्रावतार-कथा भी वीर रस प्रधान है। इस प्रबन्ध में ३५८ छंद हैं और युद्धों का ओजस्वी एवं सजीव चित्रण हुआ है।

'दशन ग्रंथ' में संकलित 'चण्डी चरित्र' (चण्डी चरित्र उक्ति विलास एवं चण्डी चरित्र द्वितीय) भी वीर रसात्मक रचनाएं हैं। इनमें कवि ने देवी के युद्धों का ही वर्णन किया है, अन्य किसी भी प्रसंग को महत्व नहीं दिया। साम्प्रदायिक

सिद्धान्तों, उपासना-विधि, मर्यादा अथवा नैतिक मूल्यों का इसमें कहीं भी विवेचन नहीं हुआ। ये काव्य-ग्रंथ भक्ति-ग्रंथ के रूप में न लिखे जाकर वीर-काव्यों के रूप में लिखे गए हैं। वस्तुत:, दशमगुरु ने देवी के दुष्टदमनकारी युद्धों में उसके पराक्रम और शौर्य प्रदर्शन को अपनी युग-परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में आंका और हिन्दुत्व और देश की उस संकटकालीन स्थिति में उसे शुद्ध शक्ति के रूप में ग्रहण किया। 'चण्डी चरित्र' असुर संहार (यवन अत्याचारी) के लिए भारतीय वीर-शक्ति का आह्वान करने वाला शक्ति काव्य है।

'दशमग्रंथ' में चौबीस-अवतार एवं चंडी की कथाओं का निरूपण अवश्य किया गया है, परन्तु उनमें कहीं भी यह नहीं कहा गया कि वे इन देवी-देवताओं अथवा अवतारों के ब्रह्मत्व में विश्वास रखते हैं। उनके अनुसार ये सभी अवतार कीड़ों के समान हैं, करोड़ों की संख्या में हैं, जिन्हें परमात्मा बनाता है और फिर नष्ट कर देता है। पुराणों में जैसी अवतार कथाएं वर्णित हैं, उन्हें कवि ने उसी रूप में चित्रित कर दिया है। इन्हें ग्रहण इसलिए किया गया है कि उन्हें इन कथाओं की दुष्टदमनकारी प्रवृत्ति से अपने उद्देश्य की सफलता में बल मिलता था और उनके अनुयायियों को उत्साहित करने में भी वे सहायक हो सकती थीं और हुईं। वे इन अवतार-कथाओं से उनके हृदय में धर्मयुद्ध के लिए अतुल चाव एवं उत्साह पैदा करने में सफल हुए। परन्तु ऐसा करने से वे कदापि अवतार-वादी सिद्ध नहीं होते। यदि जायसी, कुतवन, मंझन जैसे सूफी कवि हिन्दू कहानियों को अपनाने से हिन्दू नहीं हो जाते, बल्कि सूफी ही रहते हैं, वरन् उन कथाओं के माध्यम से सूफीमत का प्रचार करने में अधिक सफल रहते हैं, तो गुरु गोबिन्दसिंह अवतार-कथाओं का वर्णन करने मात्र से अवतारवादी भावना में विश्वास रखने वाले कैसे हो सकते हैं, जब कि इन अवतार-कथाओं में भी स्थान स्थान पर—आरम्भ अथवा अंत में भी वे इन अवतारों एवं देवी-देवताओं के ब्रह्मत्व का खंडन करते रहे हैं।

वस्तुत: गुरु गोबिन्दसिंह ने पुराणों की अवतार-कथाओं को अवश्य ग्रहण किया, परन्तु अवतारवाद में उन्हें विश्वास नहीं। उन्होंने इन अवतार कथाओं को इस रूप में ढाला है कि उनसे अवतारों के प्रति भक्ति उत्पन्न

नहीं होती, जैसा कि पुराणों का उद्देश्य है, वरन् धर्मयुद्ध के लिये उत्साह और प्रेरणा मिलती है। उन्होंने लिखे ही ये अपने अनुयायियों में अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध लड़ने का उत्साह उत्पन्न करने के लिए थे और इसमें युद्ध प्रसंगों को ही अधिक विस्तार दिया गया है।

निर्बल और असहाय हिन्दू जनता में नया जीवन डालने के लिए तथा उनक सुप्त क्षत्रियत्व को जगाने के लिए ही ये वीर-कथाएं लिखी गई हैं। ऐसी उत्साह पूर्ण एवं साहसी कथाएं किसी भी व्यक्ति में अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए धर्म-युद्ध करने का अतुल उत्साह और साहस उत्पन्न कर सकती हैं।

'दशम ग्रंथ' की इन सभी रचनाओं में युद्ध का विस्तृत और विशद चित्रण हुआ है। यद्यपि उनमें योद्धाओं की भिडंत अथवा प्रहार-प्रतिप्रहार की प्रधानता है और उसका अत्यन्त ओजस्वी, उग्रता-पूर्ण, प्रचंड एवं भीषण वर्णन करने में कवि पूर्ण सफल रहा है। द्वन्द-युद्ध, दो दलों के पारस्परिक युद्ध एवं एक योद्धा के अनेक सैनिकों से जूझने के चित्रण में भी उसे पूर्ण सफलता मिली है, फिर भी सेना प्रस्थान, युद्ध-भूमि की विकरालता, योद्धाओं की वीरता एवं शौर्य-प्रदर्शन तथा उनकी उत्साहपूर्ण उक्तियों आदि का भी सजीव चित्रण किया गया है।

सेना प्रस्थान—

'रामावतार', 'कृष्णावतार', 'चण्डी चरित्र' आदि में अनेक स्थानों पर कवि ने सेना-प्रस्थान का आतंकपूर्ण एवं सजीव चित्रण किया है। इनके अतिरिक्त मत्स्य (४१–४२), नर नारायण (१७–१८), वराह (५–१४), परसराम (१२–१३) रुद्र (१८–३२), जालन्धर (१५–२०), सूर्य (१०–१८) आदि में भी सेना-प्रस्थान का चित्रण हुआ है।

युद्ध-भूमि—

युद्ध-भूमि में जूझते हुए वीरों, टकराते हुए अस्त्र-शस्त्रों, शरीर को बेधते हुए तीरों, हताहत होते हुए योद्धाओं, भीषण ध्वनि करते हुए रण-वाद्यों, रक्त-

रंजित-भूमि, टूटते हुए खोल, ढुलकते हुए ढोल, कट कर गिरते हुए अँगों, विखरे हुए टोपों, कटे हुए धड़, फटे हुए सिर से उठते हुए रुधिर के छींटे, कटी हुई परन्तु फड़कती हुई भुजाओं, रक्त और धूलि में लोट-पोट होते हुए क्षत-विक्षत अश्वों, घायल चिंघाड़ते हुए हाथियों, फिसे हुए शिरस्त्राण, योद्धा रहित त्रस्त घोड़ों, शस्त्रों से उठते हुए अग्नि पुंज, कराहते हुए सैनिकों, भागती हुई भीड़, घूम कर चक्कर खाकर गिरते हुए जवानों, टूटे हुए अस्त्र-शस्त्रों, मांस, मज्झा और रुधिर पर लपकते हुए काक, कंकों एवं गिद्धों, चीत्कार करती हुई डाकनियों, रुधिर पान करती हुई जोगनियों, नाचते हुए वीर-वेतालों, आदि का विशद वर्णन किया गया है।

युद्ध-भूमि के इन भयावह, विकराल और वीभत्स दृश्यों को सजीवता प्रदान करने के लिए उनकी तुलना टकराते हुए पर्वतों, फुंकारते हुए सर्पों, अमावस्या में जलते हुए मसानों, ढहते हुए कंगारों, महाज्वाल में भस्मीभूत होते हुए तृण-कुशों, उच्छृंखल जलनिधि आदि से की गई है।

युद्ध के ऐसे विकराल एवं भयावह दृश्य कायरों को भले ही युद्ध से विमुख करते हों, शूरवीरों में तो ऐसे भीषण युद्ध ही आकर्षण और उल्लास उत्पन्न करते हैं।

रण-वाद्य, अस्त्र-शस्त्र, तनत्राण, शिरस्त्राण एवं वाहन आदि––

'दशम ग्रंथ' की वीर-रसात्मक रचनाओं के युद्ध-वर्णन में प्रयुक्त होने वाले संख, घंटा, ढोल, मृदंग, नफीरी, तबला, बंब, नगारे, परढे आदि रण-वाद्यों, बरछी, कमान, गदा, वाण, असि, कृपाण, मूसल, हल, चक्र, मुगदर, त्रिशूल, करधर, सैहथी, सांग, बरछा, शक्ति, निषंग, तुपक, तुफंग, कवच, टोप आदि अस्त्र शस्त्रों एवं हाथी, कई जातियों के घोड़ों, रथ और सिंह आदि वाहनों का वर्णन हुआ है। कवि ने कहीं कहीं मदिरा, अफ़ीम, भांग आदि के नशों के सेवन का भी उल्लेख किया है।

युद्ध-विधि-–

इसी तरह इन युद्धों में शस्त्र-संचालन की अनेक विधियों एवं युद्ध-कला की अनेक युक्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है, जिसका उद्देश्य अपने

अनुयायियों को युद्ध-विद्या से पारंगत करना था। कवि ने तत्कालीन युद्ध-विद्या की ओर कई स्थानों पर संकेत किया है। पहाड़ी राजा काठ के किले बना कर आक्रमणकारी से लड़ते थे, युद्धों में तोप का बड़ा महत्व था, कई बार रात के समय आकस्मिक आक्रमण कर दिया जाता था, हाथियों से दुर्ग-द्वार तुड़वाने का काम लिया जाता था, युद्ध के समय सेनाओं के मार्ग में पड़ने वाले गावों को लूट लिया जाता था, युद्ध में साथ न देने वाले लोगों को अपने स्थान से निकाल दिया जाता था, लूट का माल बहुधा सैनिकों में बांट दिया जाता था, शत्रु नगर का घरा डाल कर भीतर के सैनिकों के लिए मार्ग बंद करके उनके लिए अन्न संकट उत्पन्न कर देते थे, उस ओर जाने वाले जल-स्रोतों को या तो रोक दिया जाता था, या उसमें मुर्दा पशु फेंक कर उसके जल को खराब कर दिया जाता था, इत्यादि। कुछ स्थानों पर सैनिक मनोविज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया गया है।

शूरवीरों का व्यक्तित्व—

युद्ध वर्णन के प्रसंगों में शूरवीरों के व्यक्तित्व, उनकी आकृति, डील डौल, साज सज्जा, वेश भूषा, वीरता, साहस आदि के वर्णन का महत्वपूर्ण स्थान है। 'दशम ग्रंथ' में युद्ध कार्य में व्यस्त योद्धाओं के व्यक्तित्व का अंकन सूक्षमता और सजीवता से किया गया है। ऐसे स्थलों पर कवि ने निष्पक्षता से काम लिया है और शत्रुपक्ष के वीरों की वीरता की भी प्रशंसा की है। उनके शौर्य, सैनिक-शक्ति, युद्ध-कुशलता, अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार आदि का वर्णन विशदता से हुआ है। इससे रचना में एक कलात्मक सौन्दर्य भी आ गया है, क्योंकि समान वल वाले योद्धाओं के साथ युद्ध ही घोर संग्राम के रूप में सामने आते हैं और इस से वर्णन में सजीवता, स्वाभाविकता एवं ओज का उचित प्रदर्शन हो सकता है। इसी प्रकार जहां विपक्षी दल के कायरों के भय और उनकी पराजय का वर्णन किया है, वहां स्वपक्ष के वीरों की कमजोरियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

'दशम ग्रंथ' के अनुसार सच्चा शूरवीर भूमि में हंसते हंसते प्राणों की वलि दे देता है। ऐसा वीर वीर-गति पाकर विमानारूढ़ होकर स्वर्ग को

जाता है और अप्सराएं उसको वरण करती हैं। निःसंदेह यह भावना वीरों को धर्मयुद्ध के लिए उत्साहित और प्रेरित करती है। लेकिन 'दशम ग्रंथ' में ऐसे भी वीर हैं जिन्हें विमानारूढ होकर स्वर्ग जाने की अपेक्षा रणभूमि में निरन्तर लड़ते रहना अधिक रुचिकर है। मारू बाजे उन्हें सुहावने लगते हैं और युद्ध क्षेत्र उनके लिए क्रीड़ा क्षेत्र है।

ऐसे वीरों को कवि ने स्वामि-भक्ति एवं धर्म-भावना से प्रेरित होकर युद्ध-भूमि में उत्साह से लड़ते दिखाया है तथा उनके वीरोचित रणोल्लास की भी व्यंजना की है। युद्ध के लिए वे उत्कंठित दिखाई पड़ते हैं। कोई प्रति-द्वन्द्वी न मिलने पर वे रुद्र से यही वर मांगते हैं कि कोई उनके साथ जूझने वाला हो। इन वीरों का व्यक्तित्व वहां और भी निखर आता है, जब वे मृत्यु उपरान्त भी युद्ध करना चाहते हैं। हाथ पांव कट जाने पर भी लड़ते रहते हैं, सिर के कट जाने पर कवंध ही खड्ग चलाता रहता है।

'दशम ग्रंथ' में वीरता के उच्च आदर्श के भी दर्शन होते हैं। शत्रु पक्ष के वीरों के मूर्छित हो जाने पर पर-पक्ष के वीर स्वयं उन्हें जलपान भी करवाते हैं, इतना समय देते हैं कि स्वस्थ होकर वे उनके साथ पूरी शक्ति से फिर युद्ध कर सकें।

'दशम ग्रंथ' में कहीं कहीं योद्धाओं की वाह्य एवं स्थूल विशिष्टताओं का भी वर्णन किया गया है और साथ ही उनके अफ़ीम, भांग, मदिरा आदि के सेवन से मस्त होने का भी उल्लेख किया है। इन रचनाओं में गुरु गोविन्दसिंह, दुर्गा, जरासंघ, राम, रावण, मेघनाथ, कृष्ण, बलराम, अमिटेस, खडगेस, गजसिंह, अमतेस आदि अनेक वीरों के सबल और सशक्त व्यक्तित्व उभर कर सामने आते हैं।

गर्वोक्तियां एवं अनुभाव—

शूरवीरों की उत्साहपूर्ण उक्तियां एवं अन्य अनुभाव उनके व्यक्तित्व को सजीवता प्रदान करते हैं और उनके शौर्य, साहस, दृढ़ता, निश्चय, निर्भीकता आदि की व्यंजना करते हैं। 'दशम ग्रंथ' में बहुत से वीरों की ओजस्वी

गर्वोक्तियों और जोश के साथ शस्त्र संचालन, दांत पीसने, मुखाकृति एवं नेत्रों के लाल होने आदि अनुभावों के दर्शन होते हैं। 'अपनी कथा', 'रामावतार', 'कृष्णावतार' तथा 'चण्डी चरित्र' में ऐसी बहुत सी गर्वोक्तियां देखी जा सकती हैं। 'कृष्णावतार' इस दृष्टि से एक विशिष्ट रचना है।

छंद :

'दशम ग्रन्थ' में युद्धों के गतिशील, वेगपूर्ण एवं ध्वनि-युक्त चित्र प्रचुर प्रमाण में उपलब्ध होते हैं। युद्ध के दृश्यों को तीव्रता, वेग एवं क्षिप्रता प्रदान करने के लिए कवि ने अनेक विधियों से काम लिया है। उन्होंने युद्ध वर्णन में छन्द वैविध्य एवं छन्द परिवर्तन का बहुत प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ चण्डी चरित्र (द्वितीय) के सत्रह पृष्ठीय युद्ध वर्णन में सत्रह छन्दों का प्रयोग हुआ है और सतावन वार छन्द परिवर्तन हुआ है। इस छन्द-वैविध्य एवं छन्द-परिवर्तन से एक तो युद्ध वर्णन में एकरसता तथा नीरसता नहीं आने पाती, दूसरे अनुकूल छन्द के प्रयोग से युद्ध की गति का सही चित्रण हो जाता है। यहां कवि ने युद्ध का भीषण और विकराल वातावरण प्रस्तुत किया है। इसलिए क्षिप्रगति एवं लघु छन्दों का प्रयोग अधिक किया है। दीर्घ छन्दों में भी आन्तरिक तुक के प्रयोग से तीव्रता लाने का प्रयत्न किया गया है। युद्ध की ध्वनी को चित्रित करने के लिए उन्होंने संगीत-छन्दों का प्रयोग किया है। 'दशम ग्रंथ' में युद्ध की मनः स्थिति, व्यापार तथा वेग के अनुकूल समर्थ एवं उपयुक्त छन्दों का प्रयोग कवि की काव्य-क्षमता का परिचायक है।

इन युद्धों में प्रयुक्त प्रमुख छन्द हैं—दोहा, चौपई, सोरठा, कबित्त, सवैया, रसावल, भुजंगप्रयात, पद्धरि, अडिल, तोमर, तोटक, मधुभार, रूआवल, नवनामक, त्रिभंगी, नराज, संगीत-भुजंगप्रयात, संगीत-मधुभार, संगीत-नराज, वेलीबिद्रुम। त्रिगदा, त्रिडका, त्रिणणिण, अजबा, अकबा, दोहा आदि 'कृष्णावतार' के प्रमुख छन्द हैं जिनमें युद्ध की भीषण गति एवं ध्वनि का चित्रण हुआ है तथा 'चण्डी-चरित्र' उक्ति विलास' में सवैये एवं कबित्त से ही अधिक काम लिया गया है।

भाषा :

भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार है । उसकी भाषा में शक्ति एवं सामर्थ्य है और शैली प्रवाह-पूर्ण और प्रभावशाली है । एक कुशल जड़िया की भान्ति शब्दों का चयन करके उन्हें उपयुक्त स्थान पर जड़ कर वह अनुकूल वातावरण की सृष्टि कर लेता है । उसके पास शब्दों का अक्षय भंडार है । पंजावी, फारसी, संस्कृत, अरबी, अपभ्रंश, डिंगल आदि के प्रचलित एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग करते समय भी वह संकोच नहीं करते । यदि वे शब्द युद्ध का अभिष्ट वातारवण निर्मित करने में सहायक हों। उनकी वर्ण-योजना, अक्षर-विन्यास तथा शब्द-चयन ऐसा है कि युद्ध की गति एवं ध्वनि के अनुकूल वातावरण उपस्थित हो जाता है । आवश्यकता अनुसार कवि शब्दों के रूप या उच्चारन को विकृत करके या नये अर्थों में उनका प्रयोग कर लेता है । अभिव्यक्ति को सशक्त वनाने के लिए वहुअक्षरात्मक-शब्दों एवं मिश्रित-विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है ।

इसके अतिरिक्त अनुकरणात्मक-शब्दों, अनुप्रासयुक्त-वर्ण-योजना, संयुक्ताक्षरों, अनियमित अनुनासिकों, टकारात्मक एवं रकारात्मक व्यंजनों, ध्वनि-शब्दों एवं संगीत-शब्दों के प्रयोग से वीरसानुकूल ओजगुण द्वारा भी युद्ध वर्णन में सजीवता लाने का प्रयत्न किया गया है । प्रत्येक शब्द से युद्ध के अनुकूल ध्वनि निकलती है और तदानुरूप भाव का प्रेषण होता है । कवि ने बहुधा ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जिन से खड्गों की खटाखट, कटारों की कटाकट, तोपों की तड़ातड़ तथा धौंसों की धुकार सुनाई पड़ती है। शब्दों की ध्वनि युद्ध के वातावरण के अनुरूप है । प्रत्येक शब्द अपने में एक ध्वनि-चित्र लिए हुए है । त्रिडडिड, व्रिडडिड, द्रिडडिड, भ्रिडडिड, ट्रिडडिड जिडडिड आदि शब्द किसी विशेष अर्थ के सूचक नहीं हैं फिर भी अपनी ध्वनि से वे एक विशिष्ठ वातावरण की सृष्टि करते हैं । ऐसे शब्दों से युक्त छन्दों के उच्चारण से भी युद्धोत्साह की वृद्धि होती है। वस्तुतः कवि चित्रात्मक, बिम्ब-विधायक, ध्वन्यात्मक एवं भाव-व्यंजक शब्दों के प्रयोग में अत्यन्त निपुण है ।

चित्रात्मकता :

'दशम-ग्रन्थ' की यह भी विशिष्टता है कि उसमें युद्ध के गत्यात्मक चित्र वहुत मिलते हैं। डा० हरिभजन सिंह का कथन है कि ग्रंथ में युद्ध के वर्णन की कहीं से कोई पंक्ति पढ़ें तो चित्र, ध्वनि, गति और भावातिरेक का सुन्दर संयोग दृष्टिगोचर होगा। 'थका हुआ शरीर, खून के छींटे, शरीर पर घाव, शून्य पीठ घोड़ा आदि के चित्र भी ध्वनी के संयोग से रहित नहीं हैं। उनके युद्ध वर्णनों में इतनी गति है कि वे शस्त्र का भी स्थिर अवस्था में वर्णन नहीं करते। म्यान में वन्द तलवार, शूरवीर की कमर में लटकती कृपाण, तुणीर में विश्राम करते बाण, अथवा शूरवीर के हाथ में स्थिर नेजा, बरछा आदि के स्थिर चित्र इन युद्धों में नहीं मिलेंगे। उनके अस्त्र-शस्त्र अनवरत् अविश्राम की अवस्था में दिखाई देते हैं।'[1]

अलंकार :

युद्ध-दृश्यों को और अधिक चित्रमय एवं सजीव बनाने के लिए कवि ने चित्रमय अलंकार-योजना के रूप में अपनी विम्व-विधायिनी कल्पना-शक्ति से भी पूरा काम लिया है। युद्ध के गतिमय एवं ध्वनिपूर्ण दृश्यों के अनुकूल समान विम्व सामने लाकर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा विरोधाभास, उदाहरण आदि अलंकारों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विशेष रूप से 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' और 'कृष्णावतार' में उनकी प्रभावशाली एवं चित्रात्मक उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का कमाल देखा जा सकता है। गेरू के पनाले के समान रक्त प्रवाह, तिल के समान शत्रु को पीसना, पृथ्वी को फोड़ कर निकलने वाले वीज की भांति तीर का शरीर वेध कर निकलना, मक्खन की मटकी फूटने पर उठने वाले मक्खन के छींटों की तरह फूटे हुए सिर में से खून के छींटे उठना, नक्षत्र अथवा वृक्ष के पत्तों या फल एवं कद्दू की भांति सिर का टूट गिरना, आदि अनेक ऐसे चित्र हैं जहां कवि ने अनूठी उपमान-योजना प्रस्तुत की है। दामिनी सी चमक, बादल सी गरज, वर्षा सी तीरों की बौछार, आदि में भी

---

१. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य पृ० २२१, २२६, २५६

Indian Institute of Advanced Study
Acc. No. 76609
Date 18-7-91

प्रेषठीय उपमान देखे जा सकते हैं। पौराणिक घटनाओं, प्रकृति, वन, पर्वत, पवन, वर्षा, घन, पुष्प, वृक्ष, व्यापार, रीति-रिवाज, विवाह, होली आदि से दर्जनों ऐसे बिम्ब इस ग्रन्थ में आए हैं । परन्तु कहीं भी अलंकार अभिव्यक्ति पर हावी नहीं होने पाए । वे सर्वत्र रसोत्कर्ष में सहायक होकर ही आए हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'दशमग्रंथ' का अधिकांश भाग वीररस से पूर्ण है और कवि ने इसमें युद्धों का अत्यन्त सजीव, गतिशील, वेगपूर्ण एवं ओजस्वी चित्रण किया है । वीरों के उत्साह और उल्लास की अभिव्यंजना भी कुशलता पूर्वक की गई है। इस ग्रंथ का युद्ध वर्णन 'रासो' ग्रंथों की टक्कर का है । हिन्दी का कोई भी अन्य ग्रंथ इस दृष्टि से उसका मुकाबिला नहीं कर सकता ।

इसमें वीरता का स्वर इतना प्रवल है कि काम, क्रोध आदि मानसिक विकारों की व्यंजना भी दुर्जन शत्रुओं के रूप में की गई है । जिन पर विज्य प्राप्त करने के लिए शील, सन्तोष, संयम, विवेक आदि शूरवीरों की सेना संगठित करनी पड़ती है। गुरु गोविन्दसिंह ने इन वीरों के आकार, वाहन एवं युद्ध का भी सजीव वर्णन किया है । इसी प्रकार युद्धेतर प्रसंगों में भी युद्ध के वातावरण का प्रभाव दिखाई पड़ता है । शृंगार, वात्सल्य, करुणा आदि से सम्बन्धित प्रसंगों में अप्रकृत विधान रूप में वीरता का भाव परिव्याप्त है । होली, नृत्य, मदिरालय आदि के रूप में युद्ध का वर्णन तो कई स्थानों पर किया गया है ।

वस्तुत:, 'दशम ग्रंथ' एक ऐसी रचना है, जिसमें वीर रस का उदात्त रूप चित्रित हुआ है । इस में युग-चेतना, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक-भावना के दर्शन होते हैं । इस रचना में क्षत्रियत्व का तेज और स्वाभिमान है तथा धर्म एवं लोक रक्षा का भाव निहित है । इस रचना का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से इतना अधिक महत्व है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास का जब भी पुनर्मूल्यांकन होगा तो उसकी वीर काव्य-परम्परा में 'दशम ग्रन्थ' की इन वीर रचनाओं को महत्वपूर्ण स्थान देना पड़ेगा। पंजाब के परवर्ती वीर-काव्यों पर 'दशम ग्रन्थ' की वीर-भावना और शैली का ही सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है ।

76609
18.7.91

Library IIAS, Shimla
H 811 D 26 V
00076609